दो प्रहरी जो अपनी व्याख्याएँ देते चलते हैं, बहुत कुछ ग्रीक कोरस के निम्न ~~वर्ग के~~ वर्ग के पात्रों की भाँति हैं परन्तु अपना अपना प्रतीकात्मक महत्व भी है। कृष्ण के वधकर्त्ता का नाम 'जरा' था, लेखक ने उसे वृद्ध याचक की प्रेतछाया मान लिया है।

समस्त कथावस्तु पाँच अंकों में विभाजित है। प्रथम अंक में युद्ध में परास्त कौरव नगरी की भयंकर स्थिति दिखाई गई है। विदुर संजय के संदेश की प्रतीक्षा में हैं और धृतराष्ट्र के पास आते हैं। इस वार्तालाप के माध्यम से लेखक का एक महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य स्पष्ट होता है वह है वैयक्तिक सीमा से बाहर की सत्य की स्थिति। जिस स्थिति का विरोध कर मनुष्य विनाश की ओर अग्रसर होता है। धृतराष्ट्र कहते हैं

"मेरे मन ने सारे भाव किए थे विकसित
मेरी सब वृत्तियाँ उसी से परिचालित थीं!
मेरा स्नेह, मेरी घृणा, मेरी नीति, मेरा धर्म
बिलकुल मेरा ही वैयक्तिक था. –

. . . . . . .

वे ही थे अंतिम सत्य
मेरी ममता ही वहाँ नीति थी,
मर्यादा थी।"

और दूसरा सत्य यह है कि शक्तिशाली व्यक्ति मर्यादा को हमेशा अपने हित में बदल लेता है।

"जिसको तुम कहते हो प्रभु
उसने जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया वंचक है।"

सोनी सलोनी
हिन्दी विभाग
वीमेंस कॉलेज,
समस्तीपुर.

स्नातक - हिन्दी प्रतिष्ठा द्वितीय खंड
(B.A. Part II Hons.)
तृतीय पत्र.

पाठ्य विषय: अंधा युग

काव्य नाटक की उपलब्धि को रेखांकित करने वाली महत्वपूर्ण रचना के रूप में धर्मवीर भारती की रचना 'अंधायुग' हमारे सामने आती है जिसने हिन्दी साहित्य में पहली बार कविता और नाटक, साहित्य और रंगमंच तथा अतीत और वर्तमान का अभिन्न संबंध पूरी संपूर्णता के साथ स्थापित किया। इस दृश्य काव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है उसके सफल निर्वाह के लिए महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आश्रय लिया गया है।

मुख्यत: महाभारत के अठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभास तीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक की कथा ली गई है। स्थापना के बाद पाँच महत्वपूर्ण घटनाओं को आधार बना कर उस काल के पतनशील रूप का उद्घाटन किया गया है। लेखक ने प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया है

युद्धोपरान्त,
यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं।

यह कथा उन्हीं अंधों की है,
या कथा ज्योति की है अंधों के माध्यम से.

शास्त्रीय रूप से देखा जाए तो लेखक स्वयं मानते हैं कि काव्य की अधिकतर कथावस्तु 'प्रख्यात' है, केवल कुछ ही तत्व 'उत्पाद्य' हैं - कुछ स्वकल्पित पात्र और कुछ स्वकल्पित घटनाएं। प्राचीन पद्धति भी इसकी अनुमति देती है।

विदुर की प्रभु के प्रति आस्था

'ज्ञान जो समर्पित नहीं है
अधूरा है . . . .
. . . .
भय से मुक्त होकर
तुम प्राप्त मुझे ही ~~होओगे~~ होगे
इसमें संदेह नहीं"

गांधारी को आवेशित कर देती है और वह प्रभु को खुलेआम वंचक सिद्ध करती है तो विदुर कहते हैं 'क्षमा करो प्रभु!

आस्था तुम लेते हो
अनास्था लेगा कौन?"

हताश - पराजित हस्तिनापुर और कौरव राज विभिन्न स्तरों पर झंझावातों का सामना कर रहा है। द्वितीय अंक में पशुत्व का उदय चित्रित किया गया है। जब संजय कौरवों के वध का स्मरण करता है तब उसे पता चलता है कि कृतवर्मा और कृपाचार्य भी जीवित हैं। तभी अश्वत्थामा आक्रमण करके संजय को दबोच लेता है ~~फिर~~ पर कृतवर्मा और आचार्य उसे छुड़ाते हैं। भय, अपमान, हताशा और पराजय से व्यक्ति जिन मनोग्रंथियों का शिकार होता है — अश्वत्थामा में वही पशुवृत्ति के रूप में उदित होता है

" ~~तो सुनो कृष्ण~~ !
~~प्रभु हो या परात्पर हो~~ :
~~कुछ भी हो~~ :

" मैं क्या करूँ?
मातुल, मैं क्या करूँ?
वध मेरे लिए नहीं रही नीति
वह है अब मेरे लिए मनोग्रंथि
किसको पा जाऊँ, मरोड़ूँ मैं!"

तृतीय अंक में अश्वत्थामा के तथा धृतराष्ट्र, विदुर, युयुत्सु आदि के संवाद से अर्द्धसत्य की अभिव्यक्ति की गई है। युयुत्सु का सत्य है कि वह धृतराष्ट्र का पुत्र होने के बावजूद युधिष्ठिर की ओर से लड़ा लेकिन अंत में वह अपने दल में लौट आता है ~~क~~ जहाँ उसे अपने लोगों की उपेक्षा और घृणा मिलती है। अपनों के विरुद्ध खड़ा होने का सत्य युयुत्सु को भी कुंठा और कष्ट देता है। उधर अश्वत्थामा सारी मर्यादा को परे रख कर परास्त दुर्योधन से सेनापति पद पर अभिषिक्त होता है और ~~रात्रि के अंधेरे में~~ शेष पाण्डवों को मारने का व्रत लेता है इसके लिए वह कोई भी मार्ग अपनाने को तैयार है।

चतुर्थ अंक में गांधारी का शाप वर्णित है। गांधारी सत्य-असत्य धर्म-अधर्म की विवेचना करते हुए कौरवों की पराजय और उनके वध के लिए कृष्ण को जिम्मेदार ठहराती है और उन्हें शाप देती है। गांधारी के सामने संजय धृष्टद्युम्न और अन्य पांडवों की हत्या का समाचार देते हैं तो विदुर घबरा जाते हैं लेकिन गांधारी उत्सुकता से पूछती है। जिसे विदुर जघन्य अपराध की कोटि में रखते हैं वही गांधारी के लिए वंदनीय है। इसी अंक में धृतराष्ट्र के कौरव नगरी छोड़ने का संकेत मिलता है।

अश्वत्थामा अपने पशुत्व के लिए युधिष्ठिर को उत्तरदायी ठहराता है तो गांधारी इसी पशुत्व भावना के वशीभूत होकर श्रीकृष्ण को शाप देती है। "तो सुनो कृष्ण

- - - - -

प्रभु हो मारे जाओगे पशुओं की तरह"।

पाँचवें अंक में विजय को एक ~~प्रतीक~~, आत्महत्या के रूप में चित्रित किया गया है। भिक्षुक, गूँगा सभी प्रतीक पात्र स्थिति की अभिव्यक्ति करते हैं। युधिष्ठिर को भी आत्मग्लानि होती है।

समापन प्रभु की मृत्यु के साथ होता है। कृष्ण मरण को भी स्वेच्छा से अपनाते हैं। इसी से अश्वत्थामा को आस्था पुनः प्राप्त होती है और युयुत्सु इस आस्था को नकली और खोटा बताता है। वृद्ध याचक कहता है कि प्रभु ने इसे मरण न कह कर रूपान्तरण कहा है एवं कहा कि उन्होंने सबका दायित्व अपने ऊपर लिया। अब शेष उनका दायित्व लेंगे। यह दायित्व हर मानव-मन के उस कोने में शेष रहेगा जो सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए ध्वंसों पर नूतन निर्माण करेगा।

संपूर्ण दृश्य काव्य में अंक परिवर्तन के समय कथा गायन की योजना है। यह पद्धति लोक नाट्य परंपरा से ली गई है।

संवाद मुक्त छंदों में है और अंतराल में छंद-योजना से मुक्त कृतगंधी गद्य का भी प्रयोग किया गया है। मूलतः यह काव्य रंगमंच की दृष्टि में रखकर भी लिखा गया जिसमें यह अत्यधिक सफल सिद्ध हुआ है।

'अंधा युग' की स्थापना में ही भारतीजी ने कहा है जो कृष्ण के व्यक्तित्व से चेतना को प्रभावित करती है वही इस नाटक का केन्द्रीय भाव है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत तृतीय युद्ध की विभीषिका से ~~बचा~~ बचा कर वर्तमान युग को यह ~~शांति~~ विश्वास देने का काम करता है।

'अंधायुग' शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामों ने राजनीति और साहित्य को संकट की स्थिति से अंधकार से भर दिया। आज संसार में

मनुष्य की आत्मा जर्जर और विकृत हो गई है। अंधायुग के पात्र व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। युधिष्ठिर एवं धृतराष्ट्र नेतृत्व की अंधी उपासना के प्रतीक हैं। गांधारी अमर्यादित नैतिकता और द्वन्द्वमय विरोधाभासी संस्कारों के कारण अनास्था का मार्ग चुनती है। अश्वत्थामा उस वर्ग का संकेत देता है जिसपर महायुद्धों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। कृष्ण ज्योति, विवेक और मानवता के प्रतीक हैं तो संजय निष्क्रिय और निरपेक्ष सत्य का, युयुत्सु धुरीहीन व्यक्तित्व का प्रतीक है।

'अंधा युग' नाटक के माध्यम से नाटककार ने युद्धोत्पन्न मूल्यहीनता, विकृति, कुंठा और वैयक्तिक एवं सामूहिक विघटन के प्रति आज के मानव को सावधान किया है।